



प्यारे किसान भाइयो—बहनों, आदिवासी क्षेत्र के भाइयो—बहनो, प्यारे बच्चो, संगठन के पदाधिकारियों जय गुरु—जय स्वराज !!

आप सभी को अगस्त माह और विशेष रूप से इस माह में आने वाले प्रत्येक त्योंहार जिसमें कि आदिवासी दिवस (9 अगस्त), रक्षाबंधन, 15 अगस्त से लेकर प्रकृति से जुड़े हुए कई त्योंहार आते हैं। प्रत्येक त्योंहार की अनंत और देशों शुभकामनाएं।

हर बार पत्रिका के माध्यम से हमारा यह प्रयास होता है कि हम किस प्रकार से त्योंहारो से सीखें, त्योंहारो की सिख को हम आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाएं, इसके महत्व एवं ज्ञान को हम पुनर्स्थापित करने का प्रयास करें जो कि हमारे अंचल, क्षेत्र, समाज और प्रकृति की सुरक्षा एवं सततता के लिए आवश्यक है उसको लेकर चर्चा होती है, हरियाली अमावस्या अभी ही गयी है हम दिवासा मानते हैं यह हमारे आदिवासी अंचल का एक सबसे बड़ा त्योंहार हुआ करता था और उसका सीधा—सीधा प्रकृति से महत्व था उस समय में आदिवासी दिवस की, सरकार द्वारा घोषणा की आवश्यकता नहीं होती थी वो स्वतंत्र ही हमारा प्रकृति का ऐसा त्योंहार था जिसमें हम यह महसूस करते थे कि हम किस प्रकार से प्रकृति के रक्षक और संरक्षक हैं और उसको संभालना हमारी जिम्मेदारी है, उस पर चर्चा होती थी और त्योंहारों से जुड़ाव होता था, चाहे जन्माष्टमी पर कृष्ण का संदेश हो प्रकृति गोवर्धन पर्वत को उन्होंने बचाया, जमुनाजी, गायों, गौबर व मिट्टी के साथ जुड़ाव,ऐसी फोटो, चलचित्र के माध्यम से चर्चाये लायी गयी की कभी कृष्ण मिट्टी खाते थे तो कभी गायों को चराने जाते थे, हम सभी को एक बहुत सीधा—सीधा संदेश था कि किस प्रकार से हम इन त्योंहारों से ये समझें की हमारे जीवन में क्या महत्वपूर्ण है? चाहे कृष्ण का मखन, दूध और दही खाना हो और वही हमारी परम्परा में रहा हो कि हम हमारे बच्चो को किस प्रकार से पोषण उपलब्ध कराये, हमें इन सारे विषयों को बहुत गहराई से समझने कि जरूरत है की हम त्योंहारों को कैसे ले जा सकते हैं।

विशेष रूप से इस अंक में आपसे आग्रह करना चाहूंगा कि हमें आदिवासी दिवस के उपलक्ष में भी विशेष रूप से ये सोचना चाहिए कि हम किस प्रकार से हमारी रचनात्मकता को वापिस स्थापित कर पायें, केवल मात्र एक दिन एक कार्यक्रम मनाकर के हम उस दिन को इतिश्री नहीं कर दें। हमारे लिए महत्वपूर्ण है कि संरक्षण का जो तरीका था आदिवासी जीवन शैली का, विचारो को आगे बढ़ाने का, हमारे जीवन और प्रकृति के जो घटक हैं हम किस प्रकार से रक्षा और केवल मात्र संरक्षण की दिखावटी बातें नहीं करके इसे हमारी जीवन शैली के जो तरीके हैं उसे हम कैसे संरक्षित कर पाते हैं वो बहुत महत्वपूर्ण है, हम पेड़ लगायेंगे, पेड़ का एक दिन का फोटो, एक दिन का कहना या हमारी सोशल मिडिया पर एक दिन की पोस्ट से ज्यादा हमारे लिए महत्वपूर्ण है की हम उसे कार्य में किस प्रकार से लेकर आते हैं और आने वाली पीढ़ियों को उसके तरीके कैसे बताते हैं और जो है उसको कैसे बचाते हैं, वो हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस रचनात्मकता का जो तरीका है उसको हम दूसरे समाजो तक कैसे ले जाते हैं,उसे हम किस प्रकार से स्थापित करते हैं,ताकि आने वाली पीढ़ी उसको बचा पायें, मैंने मेरी बात के शुरुआत में कहा था कि हरियाली अमावस्या, दिवासा इसमें भी यही महत्व था कि हम किस प्रकार से हमारे इस पुरे परिद्वस्य को संभाल करके कैसे रख पायें, जिसमें हमारी निर्भरता बाहर की दुनिया में कम हो, वो हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है तो हम इस माह में इस संकल्प को ले की हम हमारी रचनात्मकता जिसमें संरक्षण, मजबूती हमारे परिवार, गाँव, पंचायत से स्थापित करें।

इसी के साथ एक महत्वपूर्ण विषय पर मैं इस अंक में चर्चा करना चाहूंगा, कि हमारे क्षेत्र में वक्त के साथ— साथ जिस प्रकार से बाजार ने पैर पसारने शुरू किये हैं ये अपने आप में एक चिंता का विषय हो गया है की तम्बाकू, शराब, मोबाईल पर अश्लील सामग्री, गैर जरूरी सोशल मिडिया यह हमारे विचारो, हमारी स्वस्थ विचार धारा, हमारे जीवन मूल्यों को कमजोर कर रहा है जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियों कमजोर होगी, हर माता—पिता, बड़े भाई—बहनों, गाँव के लोगो की यह जिम्मेदारी है कि हम हमारे परिवार, गाँव और हमारे समाज की आने वाली पीढ़ियों को इन कुरीतियों से सुरक्षा करने का प्रयास करें, इस प्रकार से हम इस माह को मनाये इस रचनात्मकता को आमजन में मनाएं यही हमारी सही मायने में पहचान है, इसी के साथ, आपको अनंत—अनंत शुभकामनायें ।।

जय स्वराज— जय गुरु !!

आपका अपना
जयेश जोशी

खरीफ फसल में कीट एवं रोग प्रबंधन

खरीफ का मौसम, जो आमतौर पर जून से अक्टूबर तक होता है, वर्षा पर आधारित कृषि प्रणाली के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस अवधि में वातावरण में नमी की अधिकता और गर्म तापमान की उपस्थिति फसलों की अच्छी बढ़वार के लिए तो अनुकूल होती है, लेकिन यही जलवायु कीटों और रोगों के प्रसार के लिए भी बहुत अनुकूल परिस्थिति तैयार करती है। यदि इन हानिकारक जीवों और बीमारियों पर समय रहते नियंत्रण न किया जाए, तो किसानों को गंभीर हानि का सामना करना पड़ सकता है — जिससे न केवल उपज घटती है, बल्कि उनकी मेहनत और लागत भी व्यर्थ हो जाती है।

खरीफ के मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें जैसे — मक्का, उड़द, तुअर, कपास, चवला, मूँग और धान आदि अक्सर कीटों और बीमारियों की चपेट में आ जाती हैं। इन फसलों पर हमला करने वाले कीट जैसे कि तना छेदक, सफेद मक्खी, थ्रिप्स, माहू, पत्ती लपेटक, और इल्ली जैसे कीट पौधों के पत्तों, तनों और दानों को नुकसान पहुंचाते हैं। वहीं, विभिन्न कवक, जीवाणु और विषाणु जनित रोग — जैसे पत्तों का झुलसना, जड़ सड़न, पीलिया रोग, पत्ती पर धब्बे, और मोजैक वायरस — फसल के स्वास्थ्य को कमजोर कर देते हैं।

फसल	प्रमुख कीट	रोग	परंपरागत प्रबंधन उपाय
धान	- तना छेदक - पत्ती मोड़क - भूरे माहू	- ब्लास्ट - शीथ ब्लाइट - बैक्टीरियल ब्लाइट	- बीज उपचार: ट्राइकोडर्मा आधारित फफूंदनाशी से बीज उपचार करें। - फेरोमोन ट्रेप: प्रति एकड़ 5 फेरोमोन ट्रेप लगाएं। - नीमास्त्र/दशपर्णी अर्क: 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। - फसल अवशेष न जलाएं : जैव विविधता बनी रहेगी। - खेत की मेड़ के पास —पास फूलों वाले पौधे लगाएं—लाभदायक कीट आकर्षित होंगे।
मक्का	- फॉल आर्मी वॉर्म - तना छेदक	पत्ती झुलासा, रस्ट, डाउन मिल्ड्यू	- अंडों के गुच्छे हाथ से हटाएं और नष्ट करें। - ट्राइकोग्रामा परजीवी का खेत में प्रयोग करें। - नीम तेल (1500 ppm) का 5 मि.ली./लीटर घोल छिड़कें। - नीमास्त्र और ब्रह्मास्त्र जैसे परंपरागत घोल का प्रयोग करें।
रागी	- तना छेदक, पर्णभक्षी इल्ली - थ्रिप्स, बालकनी कीट	- ब्लास्ट रोग - पत्ता धब्बा - स्मट रोग	- बीज उपचार: ट्राइकोडर्मा + गोमूत्र से करें। - नीम तेल 5 मि.ली./लीटर का छिड़काव पर्णभक्षी और थ्रिप्स नियंत्रण हेतु। - दशपर्णी अर्क का उपयोग करें — फफूंदनाशक के रूप में कार्य करता है। - फसल चक्र अपनाएं एवं खेत की सफाई रखें।
कांगनी	जड़ कीट, थ्रिप्स, शूटर कीट	डाउन मिल्ड्यू, पत्ता धब्बा, जड़ सड़न	- नीम खली (50 किग्रा/एकड़) मिट्टी में मिलाएं — जड़ों को सुरक्षा। - बीज उपचार: ट्राइकोडर्मा व गोमूत्र का घोल। - नीम तेल या नीमास्त्र का 10 दिन के अंतर पर छिड़काव। - गोमूत्र व हल्दी घोल (5%) —फफूंदनाशी प्रभाव।
उड़द/मूँग	सफेद मक्खी, माहू, चूरी कीट	येलो मोजैक, वायरस, लीफ स्पॉट	- रोग रोधी किस्मों का चयन करें। - नीम आधारित कीटनाशक (नीमास्त्र या नीम तेल) का उपयोग करें। - दशपर्णी अर्क का 10% घोल बनाकर छिड़कें। - जिक और सल्फर युक्त गोमूत्र आधारित घोल का प्रयोग करें — पोषण संतुलन के लिए।

एकीकृत परंपरागत कीट एवं रोग प्रबंधन के परंपरागत उपाय

आधुनिक कृषि में रासायनिक कीटनाशकों और फफूंदनाशकों का उपयोग आम है, लेकिन आदिवासी समुदायों द्वारा विकसित किए गए पारंपरिक उपाय भी अत्यंत प्रभावी होते हैं। ये उपाय न केवल पर्यावरण के अनुकूल होते हैं, बल्कि मृदा और स्वास्थ्य के लिए भी सुरक्षित रहते हैं। जैसे

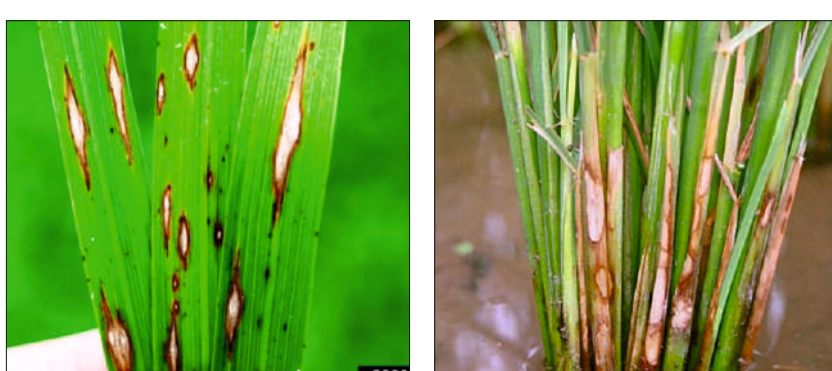
1. फसल चक्र और मिश्रित फसल प्रणाली — एक ही खेत में विभिन्न

- प्रकार की फसलें लगाने से कीटों का चक्र टूटता है और रोगों का प्रसार रुकता है।
- मित्र कीटों (लेडीबर्ड बीटल, झींगुर आदि) को संरक्षित करें।
- खरपतवार नियंत्रण करें — रोग फैलाने वाले कीटों का निवास हटेगा।
- गर्मियों में गहरी जुताई करें जिससे कीटों के अंडे, जीवाणु, फफूंद इत्यादि उच्च ताप के कारण मर जाते हैं तथा फसलों को प्रभावित नहीं कर पाते हैं।
- नीम खली, गोमूत्र, ट्राइकोडर्मा, जैसी परंपरागत सामग्री का प्रयोग करें।
- नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, दशपर्णी अर्क, छाछ—हल्दी घोल परंपरागत छिड़काव के लिए उत्तम हैं।
- नियमित निगरानी करें — समय पर पहचान और नियंत्रण।
- गोमूत्र और नीम का मिश्रण, या फिर लहसुन—मिर्च—अदरक का घोल — यह घरेलू कीटनाशी मिश्रण पत्तों पर छिड़काव के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
- भिंडी, अरंडी, सूरजमुखी, गेंदा जैसे फांस फसलों का उपयोग— ये फसलें कीटों को मुख्य फसल से दूर रखती हैं।
- प्रकाश प्रपंच और पीले चिपकने वाले कार्ड — उड़ने वाले कीटों की पहचान और नियंत्रण के लिए उपयोगी होते हैं।

निष्कर्ष: रसायन आधारित खेती पर पूरी तरह निर्भर रहने के बजाय यदि हम परंपरागत ज्ञान, स्थानीय संसाधनों और समुदाय की साझेदारी को केंद्र में रखें, तो खरीफ फसलों में कीट और रोगों का प्रबंधन अधिक स्थायी और प्रभावशाली बन सकता है। समय पर कीटों व बीमारियों की पहचान कर उनके पारंपरिक उपायों को अपनाने से न केवल फसल की सुरक्षा होती है, बल्कि भूमि की उर्वरता और जैव विविधता भी संरक्षित रहती है।



विशेष रूप से मोटे अनाज जैसे रागी और कांगनी जैसी फसलें, जो पोषण से भरपूर होती हैं, उनके लिए परंपरागत नियंत्रण तकनीकें सरल, सस्ती और कम संसाधन वाली होती हैं। इन उपायों को अपनाकर किसान महंगे रसायनों से मुक्त रहकर प्रकृति के साथ तालमेल में खेती कर सकते हैं। यह न केवल उत्पादन को टिकाऊ बनाता है, बल्कि किसानों को आत्मनिर्भरता की ओर भी अग्रसर करता है। इस समावेशी दृष्टिकोण से कृषि सिर्फ एक आजीविका नहीं, बल्कि प्रकृति और समुदाय के बीच संतुलन बनाए रखने का माध्यम बन जाती है।



वर्षा ऋतु में बच्चों का पोषण एवं स्वास्थ्य

वर्षा ऋतु आदिवासी समुदायों के जीवन में विशेष महत्व रखती है। यह ऋतु न केवल हरियाली और खेती-बाड़ी का संदेश लाती है, बल्कि जल स्रोतों के पुनर्भरण से आजीविका के साधनों को भी संजीवनी देती है। राजस्थान, मध्यप्रदेश और गुजरात के आदिवासी क्षेत्रों में यह समय खेती की तैयारी, बीजों की बुवाई और पारंपरिक खाद्य संस्कृति के पुनः जागरण का होता है।

परंतु वर्षा ऋतु अपने साथ कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ भी लेकर आती है, विशेषकर छोटे बच्चों के लिए। इस मौसम में वातावरण में नमी बढ़ने से मलेरिया, डेंगू, टाइफाइड, दस्त, सर्दी-जुकाम, त्वचा संक्रमण और निमोनिया जैसी बीमारियाँ तेजी से फैलती हैं। ये बीमारियाँ बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर करती हैं और उनके पोषण स्तर को बुरी तरह प्रभावित करती हैं।

ऐसे समय में बच्चों के समुचित पोषण और स्वास्थ्य की देखभाल अत्यंत आवश्यक हो जाती है। यदि समय पर ध्यान न दिया जाए तो यह मौसम उनके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास में अवरोध पैदा कर सकता है।

इसलिए समुदाय को पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय खाद्य पदार्थों और घरेलू उपचारों को अपनाकर इन चुनौतियों से निपटने की आवश्यकता है। जैसे- घर की रसोई में उपलब्ध हल्दी, तुलसी, गिलोय, अदरक, लहसुन, नीम आदि प्राकृतिक औषधियों का उपयोग संक्रमण से बचाव में कारगर होता है। साथ ही, पोषक तत्वों से भरपूर परंपरागत व्यंजन जैसे मक्का-चने की राब, मूंग की दाल, भुने चने, दूध, जों का सत्तू, मौसमी हरी सब्जियाँ, डीमडी, किड़ियाँ, टिंडोरी, गवार, नाल साग, पुवाड़, लुनिया, रजन, कुणा, बांस, कंदगोला, सेमफली, बोखला, काचरी और स्थानीय फल बच्चों को रोगों से लड़ने की शक्ति देते हैं।

वर्षा ऋतु में बच्चों को प्रभावित करने वाली सामान्य बीमारियाँ और उनके स्थानीय समाधान:-

1. डायरिया/दस्त

वर्षा ऋतु में दूषित जल, खुले में शौच और गंदगी के कारण बच्चों में डायरिया आम हो जाता है। बच्चों को बार-बार पतले दस्त आना, कमजोरी और कभी-कभी बुखार होना इसके प्रमुख लक्षण हैं।

स्थानीय समाधान

- बेल या अनार के छिलके का काढ़ा देना।
- मूंग की पतली खिचड़ी और छाछ में काला नमक मिलाकर सेवन।
- घर में बना गुड़ और नमक का घोल अथवा ORS देना।

बचाव

- पीने का पानी उबालकर या छानकर दें।
- हाथ धोने की आदत डालें-खासकर खाने से पहले और शौच के बाद।

2. बुखार (वायरल, मलेरिया, डेंगू)

बरसात के मौसम में रुका हुआ पानी मच्छरों की संख्या बढ़ाता है, जिससे मलेरिया और डेंगू जैसे रोग फैलते हैं। तेज बुखार, बदन दर्द, सिरदर्द, और भूख में कमी इसके लक्षण होते हैं।



परंपरागत उपचार

- तुलसी, काली मिर्च, अदरक का काढ़ा।
- हल्दी वाला दूध और पानी में नीम पत्तियाँ डालकर इन्हें उबालकर स्नान कराना।
- पसीना निकालने वाले देसी उपाय जैसे गरम पानी की पट्टी।

बचाव

- सूती बारीक कपड़े नियमित उपयोग।
- नीम, गोबर, या सूखे उपलों का धुआँ जलाना।

3. त्वचा रोग (फोड़े, खुजली, फुंसी)

वर्षा ऋतु में वातावरण में लगातार नमी बनी रहती है, जिससे बच्चों के बीच त्वचा संबंधी समस्याएँ अधिक देखने को मिलती हैं। गीले या गंदे कपड़ों को लंबे समय तक पहनना, कीचड़ या गंदे पानी में खेलना, और पसीने से भीगे शरीर की उचित सफाई न होना — ये सभी त्वचा रोगों को जन्म देते हैं। बच्चों को इस मौसम में खुजली, लाल चकत्ते, फोड़े-फुंसी या रैशेज की समस्या हो सकती है, जो उन्हें असहज व चिड़चिड़ा बना देती है। यदि समय रहते ध्यान न दिया जाए तो संक्रमण बढ़ सकता है।



स्थानीय और पारंपरिक उपचार

- नीम के पत्तों को पानी में उबालने के बाद गुनगुने पानी से बच्चों को स्नान कराना — यह त्वचा की सफाई करता है और संक्रमण से लड़ने में मदद करता है।
- हल्दी और सरसों के तेल का मिश्रण बनाकर प्रभावित स्थान पर लगाने से सूजन कम होती है और त्वचा में ठंडक मिलती है।
- मुल्लानी मिट्टी या ताजा दही का लेप त्वचा पर लगाने से जलन और खुजली में राहत मिलती है, साथ ही यह त्वचा को शुद्ध भी करता है।

रोकथाम के उपाय

- बच्चों को प्रतिदिन साफ पानी से स्नान कराना और सूखे, स्वच्छ कपड़े पहनाना जरूरी है।
- बारिश या कीचड़ के पानी में खेलने से रोकें, विशेषकर तब जब वे नंगे पैर हों।
- यदि कोई त्वचा रोग दिखाई दे, तो तुरंत घरेलू उपाय अपनाएं या आवश्यक होने पर चिकित्सा परामर्श लें।

4. सर्दी-खांसी और जुकाम

वर्षा ऋतु में अचानक तापमान में गिरावट, शरीर का भीगना, गीले कपड़ों में देर तक रहना और ठंडी हवा के संपर्क में आना — ये सभी कारण बच्चों में सर्दी, खांसी और जुकाम जैसी आम लेकिन परेशान करने वाली बीमारियों को जन्म देते हैं। यह समस्या छोटे बच्चों में अधिक देखी जाती है क्योंकि उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है। बार-बार खांसी, बहती नाक, छींकें और बुखार न केवल बच्चे को बेचैन करते हैं, बल्कि उसके भोजन और नींद की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं, जिससे उसका पोषण स्तर भी गिरता है।

स्थानीय और पारंपरिक उपचार

- तुलसी-अदरक-शहद का काढ़ा या रस—यह मिश्रण शरीर को गर्मी देता है, बलगम को बाहर निकालता है और गले की खराश को भी शांत करता है।
- अजवाइन या सरसों के तेल की सीने, पीठ और तलवों पर हल्की मालिश — यह शरीर को गर्म रखता है और सांस लेने में राहत देता है।
- हल्दी वाला गर्म दूध और गुनगुना पानी—यह आंतरिक रूप से संक्रमण से लड़ने की ताकत देता है और शरीर को गर्म बनाए रखता है।

रोकथाम के उपाय

- यदि बच्चा बारिश में भीग जाए तो तुरंत उसके कपड़े बदलें और उसे गर्म कपड़े पहनाएँ।
- रात के समय विशेष ध्यान दें कि बच्चा ठंडी सतह पर न सोए और उसका सिर व पैर ढंके रहें।
- बच्चों को हल्का व आसानी से पचने वाला गर्म भोजन दें और उन्हें पर्याप्त आराम करने दें।

सर्दी-खांसी और जुकाम जैसी सामान्य बीमारियों को समय रहते स्थानीय उपचार और सावधानियों से नियंत्रित किया जा सकता है। यह समुदाय के लिए आवश्यक है कि वे बच्चों को इस मौसम में

विशेष देखभाल और सुरक्षा प्रदान करें, ताकि उनका स्वास्थ्य और पोषण दोनों सुरक्षित रह सकें।

5. पेट के कीड़े

वर्षा ऋतु में बच्चों के पेट में कीड़ों की समस्या सामान्य रूप से देखी जाती है। यह समस्या मुख्यतः अस्वच्छता, गंदे हाथों से खाना खाने, मिट्टी में खेलने, या दूषित पानी पीने के कारण होती है। पेट में कीड़े होने से बच्चों की भूख कम हो जाती है, उनका वजन घटने लगता है और उनका शारीरिक विकास रुक जाता है। बच्चे अक्सर पेट दर्द, मिचली, कमजोरी और मल में कीड़े आने जैसी शिकायतें करते हैं। यदि समय पर उपचार न किया जाए, तो यह पोषण की गंभीर कमी का कारण बन सकता है।

परंपरागत और स्थानीय उपचार

- करेले का रस-कड़वा स्वाद होने के बावजूद यह पेट के कीड़ों को खत्म करने में बेहद प्रभावी होता है।
 - लहसुन और अजवाइन — इनका सेवन पेट को साफ करता है और कीड़ों को मारने में मदद करता है। इन्हें भूनकर या पीसकर हल्के नमक के साथ दिया जा सकता है।
 - नीम की पत्तियों का काढ़ा — नीम की पत्तियाँ एंटीसेप्टिक होती हैं और पेट की सफाई में लाभकारी हैं।
- रोकथाम के उपाय**
- बच्चों को साफ-सफाई का महत्व समझाएं— खासकर खाना खाने से पहले और शौच के बाद साबुन से हाथ धोने की आदत डालें।
 - बाहर से खेलने के बाद उनके हाथ-पैर साफ कराना आवश्यक है, विशेषकर कीचड़ या मिट्टी में खेलने के बाद।
 - बच्चों को नंगे पैर चलने से रोकें और उन्हें स्वच्छ चप्पल या जूते पहनाएं।

समुदाय यदि इन सरल परंपरागत उपायों और स्वच्छता की आदतों को अपनाए, तो वर्षा ऋतु में बच्चों को पेट के कीड़ों से होने वाली परेशानियों से बचाया जा सकता है और उनका पोषण व विकास सुरक्षित रखा जा सकता है।

वर्षा ऋतु में पोषण : स्थानीय भोजन की शक्ति

स्थानीय मौसमी आहार ही सबसे सशक्त पोषण है। आदिवासी समुदाय के घरों में पहले से मौजूद कई पारंपरिक खाद्य पदार्थ जैसे — मक्का, कोदरा, रागी, कुटकी, ताजे हरे पत्तेदार साग, काचरी, जंगल की फलियाँ, महुआ के फूल, पकल और अमलतास — इस मौसम में बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक हैं।

- दाल और मोटे अनाज की पतली खिचड़ी, मूंग और चवला जैसे अंकुरित अनाज।
- गुड़ और तिल, जिनसे शरीर को ऊर्जा मिलती है।
- छाछ, दही, और सत्तू पाचन के लिए लाभदायक हैं।
- कटू, लौकी, टिंडा, सेमफली, भिन्डी, ग्वार, पुवाड़, रजन, डीमडी आदि जल युक्त सब्जियाँ जल संतुलन बनाए रखने में सहायक हैं।

स्वच्छता और पीने के पानी की सुरक्षा

वर्षा के दौरान स्वच्छता बनाए रखना बीमारी से बचाव का मूल आधार है। घर के आस-पास जमा पानी में मच्छर पनपने लगते हैं, जिससे बीमारी फैलती है। नालियों की सफाई, कचरे का निष्पादन और घरेलू खाद बनाना — यह सब न सिर्फ स्वच्छता को बढ़ावा देते हैं बल्कि पोषण युक्त खेती को भी मजबूती देते हैं।



पीने के पानी के लिए उपाय

- पानी को छानकर उपयोग में लेना।
- मटकों को ढँककर रखना।

- कुआं, हेडपंप, जैसे जल स्रोतों की साफ-सफाई करना।
- बच्चों को बाहर का पानी पीने से रोकना।

हाथ धोने की आदत एक सरल बचाव

हाथ धोना छोटी सी आदत है लेकिन सबसे बड़ा बचाव है। शौच के बाद, खाना खाने से पहले, खेत से लौटने पर और बच्चों को खाना खिलाने से पहले साबुन, राख या मिट्टी से हाथ धोना अनिवार्य है।



बच्चों को खेल-खेल में यह आदत सिखाना चाहिए — जैसे गीत, कहानियाँ, और चित्रों के माध्यम से।

अभिभावकों की भूमिका — सुरक्षा की पहली दीवार

अभिभावक बच्चों की दिनचर्या, खान-पान, और स्वास्थ्य की निगरानी करें। मौसम बदलने पर बच्चों के कपड़े बदलना, साफ पानी देना और पारंपरिक उपचार को प्राथमिकता देना आवश्यक है।

- घर में ORS, हल्दी, शहद, नीम, तुलसी जैसे घरेलू नुस्खे उपलब्ध रखना।

- गंभीर लक्षणों पर तुरंत चिकित्सक से संपर्क करना।

- गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं को पौष्टिक आहार और गर्म रखने की सलाह दे।

सामुदायिक संगठन और संस्थानों की भूमिका

ग्राम स्वराज समूह, सक्षम समूह, बाल स्वराज समूह, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और स्कूल शिक्षकों की जिम्मेदारी है कि वे बच्चों को स्वच्छता, पोषण और मौसमी सुरक्षा की जानकारी दें।

- स्कूलों में स्वच्छता सप्ताह, खाद्य विविधता दिवस, और हाथ धोने की गतिविधियाँ कराना।

- सामूहिक सफाई अभियान—“हमारा गाँव, स्वस्थ गाँव”।

- बच्चों और महिलाओं के साथ परंपरागत वैद्य/गुणीजन ज्ञान का दस्तावेजीकरण और साझा करना।

पारंपरिक ज्ञान प्रकृति से जुड़ा समाधान:

आदिवासी समुदाय का जीवन हमेशा से प्रकृति आधारित रहा है। हल्दी, तुलसी, नीम, अदरक, लहसुन, अजवाइन जैसे घरेलू उपायों में वैज्ञानिक प्रमाण भी हैं। यदि इन उपायों को नियमित दिनचर्या में शामिल किया जाए और आवश्यकतानुसार आधुनिक चिकित्सा से जोड़ा जाए, तो यह संपूर्ण स्वास्थ्य रक्षा का मजबूत तंत्र बन सकता है। वर्षा ऋतु केवल चुनौतियों का मौसम नहीं है, यह जीवन में संतुलन और समृद्धि का प्रतीक भी है। आदिवासी समाज के पास परंपरागत ज्ञान, स्थानीय आहार, और सामूहिक प्रयास की वह शक्ति है, जिससे वह इस मौसम को एक अवसर में बदल सकता है। एक ऐसा अवसर जिसमें बच्चे बीमार नहीं, बल्कि मजबूत और सशक्त बनें। यह तभी संभव है जब अभिभावक, समुदाय, शिक्षक और संगठन एक साथ मिलकर बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण की प्राथमिकता को समझें और सामूहिक जागरूकता से बदलाव की दिशा में आगे बढ़ें।



वर्षा ऋतु में पेयजल की गुणवत्ता एवं समुदाय आधारित समाधान

मानव जीवन की आधारशिला जल है। जल के बिना जीवन की कल्पना भी असंभव है। परंतु केवल जल ही नहीं, बल्कि शुद्ध एवं सुरक्षित जल ही स्वास्थ्य का वाहक है। गांवों में विशेष रूप से बारिश के मौसम में जल स्रोतों में गंदगी मिल जाना, जलभराव, बहता नालों का जल स्रोतों से संपर्क—ये सब मिलकर जल को विषैला बना देते हैं। जिससे पीलिया, दस्त, टायफाइड जैसी अनेक बीमारियाँ जन्म लेती हैं।

शुद्ध जल वह है जो: स्वाद में अच्छा हो, स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचाए, लंबे समय तक सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जा सके।

जल जनित रोग : कारण, लक्षण और बचाव

बीमारी	कारण	लक्षण	बचाव
हेजा दूषित	जल/खाद्य	उल्टी, पतले दस्त	उबला पानी, स्वच्छता
टायफाइड	सलमोनेला बैक्टीरिया	बुखार, कमजोरी	क्लोरीन, फिल्टर
हेपेटाइटिस A/E	दूषित जल	जिगर खराब, पीलिया	उबला पानी, टीकाकरण
पीलिया	वायरल संक्रमण	आंख व पेशाब पीला	शुद्ध पानी
दस्त	बैक्टीरिया/वायरस	बार-बार पतले मल	जल संरक्षण, ORS
फ्लोरोसिस	फ्लोराइड अधिक	हड्डियाँ टेढ़ी, दांत पीले	कम फ्लोराइड वाला जल

पानी की जांच— कैसे, कहाँ और क्यों:— पेयजल की गुणवत्ता जांचना उतना ही जरूरी है जितना भोजन पकाने से पहले उसे धोना।

तरीके :

- फिल्ड टेस्टिंग किट (FTK):**— ग्राम पंचायत, स्वास्थ्य केंद्र, स्कूलों में उपलब्ध। इससे TDS, pH, आयरन, फ्लोराइड, नाइट्रेट आदि की जांच संभव, उपयोगकर्ता निर्देश के अनुसार नमूना लेकर जांच करें।
- जल प्रयोगशालाएँ :**— हर जिले या ब्लॉक में लोक स्वास्थ्य विभाग द्वारा चलाई जाती हैं, अधिक गहराई से रासायनिक और जैविक परीक्षण संभव।
- सामूहिक निगरानी:**— ग्राम जल समिति, सक्षम समूह से नियमित निगरानी करें।

जल परीक्षण कब करें?

- बारिश के तुरंत बाद
- किसी बीमारी के फैलने पर
- जल स्रोत बदलने पर
- हर 6 महीने में एक बार अनिवार्य

असुरक्षित जल के स्रोत और लक्षण

स्रोत	संकेत
गंदा कुआँ	पास में गंदगी, नालियाँ, खुला ढक्कन
पुराना हैंडपंप	लोहे का स्वाद, लाल रंग का जल
नदी/तालाब	खुले में पशु स्नान, मल मूत्र का बहाव
बिना ढक्कन की टंकी	पत्तियाँ, मच्छर, कीड़े

यदि पानी में स्वाद/गंध बदल जाए, रंग में फर्क हो या पीने के बाद पेट संबंधी समस्या हो तो पानी की तुरंत जांच कराएँ।

क्या करें—सुरक्षित पेयजल के लिए सावधानियाँ

स्रोत को स्वच्छ रखें:— कुओं को ढक्कन रखें, हैंडपंप के पास प्लेटफॉर्म और जल निकासी सुनिश्चित करें, टंकी या कंटेनर की सफाई सप्ताह में कम से कम एक बार करें।

बर्तनों को ढक्कन रखें: पानी भरने के बर्तन हमेशा ढक्कन से बंद रखें, पानी निकालने के लिए डुबकी (डिपर) या नल का प्रयोग करें।

जल को छानकर व उबालकर पिएं: कम से कम 10 मिनट उबालें, फिर ठंडा कर स्टील/मिट्टी के पात्र में संग्रह करें।

वर्षा जल संचयन: छत से गिरते जल को पाइप से टंकी/भूमिगत गड्ढे में संचित करें, छानने हेतु पतले सूती कपड़े/रेत का प्रयोग करें, यह जल घरेलू उपयोग के लिए बेहतर, स्कूलों/आंगनबाड़ी में बच्चों के लिए सुरक्षित जल की व्यवस्था करें।

पानी को शुद्ध करने के घरेलू उपाय—

उपाय	विवरण	लाभ
उबालना	जल को 10–15 मिनट तक उबालें	सभी बैक्टीरिया नष्ट होते हैं
क्लोरीन टैबलेट	एक टैबलेट प्रति 20 लीटर पानी	ग्राम स्वास्थ्य केंद्र से मुफ्त में मिलती है
सैंड-फिल्टर	बालू, कोयला व पत्थरों की परत	घरेलू निर्माण आसान, प्रभावी
मिट्टी का घड़ा	जल को ठंडा रखता है, कुछ अशुद्धियाँ सोखता है	ग्रामीण क्षेत्र में लोकप्रिय
नींबू/बीज	साइट्रिक एसिड बैक्टीरिया को कम करता है	अस्थायी उपचार
सहजन बीज	पीसकर पानी में डालें, कुछ घंटे रुके, छानें	प्राकृतिक और सस्ता

क्या न करें— आम गलतियाँ जो पानी को दूषित करती हैं

- गंदे हाथों से पानी भरना
- जल स्रोत के पास पशु बांधना या शौच जाना
- खुले में जल संग्रह करना
- पुराने बोटल/टंकी बिना सफाई के उपयोग करना
- बिना जांच के गहरे बोरवेल/तालाब का पानी पीना

स्थायी समाधान व समुदाय आधारित पहल

जल संरक्षक समूह:—ग्राम स्तर पर सक्षम समूह, ग्राम स्वराज समूह, स्वयंसेवी महिलाओं, युवाओं और बुजुर्गों को मिलाकर जल निगरानी समूह बनाएं। ये समूह जल स्रोतों की निगरानी करें, टेस्टिंग किट से जांच करें, जल प्रदूषण की सूचना पंचायत को दें, जल शुद्धिकरण की जानकारी फैलायें।

विद्यालय आधारित जागरूकता:— “स्वच्छ जल—स्वस्थ विद्यालय” अभियान

जल दिवस, पोस्टर प्रतियोगिता, नाटक, छात्र—छात्राएं परिवारों तक संदेश पहुँचाएँ

शुद्ध पेयजल की उपलब्धता, गुणवत्ता की निगरानी और उचित भंडारण, ये तीनों मिलकर ही “स्वस्थ जीवन” की नींव रखते हैं। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां जल स्रोतों पर निर्भरता अधिक है, वहां इसकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

इस मानसून, आइए संकल्प लें कि:

- शुद्ध जल का प्रयोग करें
- दूसरों को जागरूक करें
- जल स्रोतों को साफ रखें
- घरेलू उपायों को अपनाएं

“शुद्ध जल—स्वस्थ जीवन” हम सबकी साझी जिम्मेदारी है।



नदी किनारे का दृश्य, जहाँ बारिश के कारण जल स्रोत प्रदूषित हो सकते हैं।



छोटा बाँध — वर्षा जल संग्रहण का एक माध्यम।



समुदाय आधारित जल स्रोत निरीक्षण—जल गुणवत्ता पर सामूहिक निगरानी।



हैंडपंप मरम्मत — सुरक्षित पेयजल के लिए बुनियादी ढाँचे का रखरखाव।

वृक्षों का जीवनचक्र और इनसे जुड़ी आदिवासी समुदाय की परंपराएं

आदिवासी समुदायों की जीवनशैली, आस्था और परंपराएं प्रकृति के साथ एक गहरे, आत्मीय संबंध पर आधारित हैं। इन समुदायों के लिए पेड़—पौधे, वनस्पतियाँ और प्राकृतिक संसाधन केवल जीविकोपार्जन के साधन नहीं हैं, बल्कि वे उनके जीवन दर्शन, सांस्कृतिक विरासत और आध्यात्मिक चेतना का अभिन्न अंग भी हैं। विशेष रूप से राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश के आदिवासी अंचलों में वृक्षों को जीवित प्राणी की भाँति श्रद्धा से देखा जाता है, जो न केवल छाया, फल, फूल और लकड़ी प्रदान करते हैं, बल्कि पीढ़ियों से चली आ रही परंपराओं, रीति—रिवाजों और सामुदायिक एकजुटता के प्रतीक भी हैं। समाज में वृक्षों का जीवनचक्र उनका अंकुरित होना, बढ़ना, फलना—फूलना और गिरना — मनुष्य के जीवन से जुड़ा हुआ एक आध्यात्मिक संकेत माना जाता है। विशेष रूप से नीम, पीपल, महुआ और आँवला जैसे वृक्ष न केवल चिकित्सा और पोषण का स्रोत हैं, बल्कि वे लोक विश्वास, अनुष्ठानों और सामाजिक संरचना के केंद्र में स्थित हैं। इन वृक्षों से जुड़ी परंपराएँ बच्चों के लालन—पालन से लेकर बुजुर्गों की पूजा—अर्चना तक हर पड़ाव में नजर आती हैं। यह दस्तावेज इन चारों प्रमुख वृक्षों के सामाजिक, धार्मिक और औषधीय महत्व के साथ—साथ उनके जीवनचक्र और उनसे जुड़ी परंपराओं को विस्तार और प्रभाव के साथ प्रस्तुत करता है, जिससे समुदायों की प्रकृति—केन्द्रित जीवनदृष्टि को समझा और संरक्षित किया जाता है।

नीम स्वास्थ्य का प्रहरी

- नीम एक ऐसा वृक्ष है जो गर्म, शुष्क और कम उपजाऊ भूमि में भी सहजता से पनपता है। यह वृक्ष वर्ष में एक बार, विशेष रूप से मार्च से मई के बीच फूलता और फलता है। इसके जीवनचक्र की शुरुआत मानसून के समय बीज से होती है। बीज गिरने के बाद आर्द्रता पाकर वह अंकुरित होता है और धीरे—धीरे एक मजबूत और छायादार वृक्ष का रूप ले लेता है। नीम की औसत आयु 100 से 200 वर्ष तक होती है, और इसकी कठोरता इसे अन्य वृक्षों से अलग बनाती है। सूखा, अधिक तापमान और रोगों के प्रति इसकी प्रतिरोधक क्षमता इसे पर्यावरणीय असंतुलन के विरुद्ध एक दृढ़ प्रहरी बनाती है। आदिवासी समुदाय इस वृक्ष को धरती की जीवनदायिनी माँ के रूप में देखते हैं, जो बिना किसी स्वार्थ के वर्षों तक मानव समाज को अपनी सेवा देता है।
- नीम आदिवासी संस्कृति में केवल एक वृक्ष नहीं, बल्कि देवी स्वरूप है। इसे “आरोग्य दात्री” और “नैसर्गिक रक्षक” के रूप में पूजा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में मान्यता है कि नीम के नीचे देवता वास करते हैं, इसलिए इसकी छाया में बैठकर भोजन करना पुण्यदायक माना जाता है। नीम की टहनी से बनी झाड़ू का उपयोग केवल सफाई के लिए नहीं, बल्कि घर से नकारात्मक ऊर्जा को हटाने हेतु किया जाता है। खास अवसरों जैसे विवाह, संतान जन्म और नवरात्रि के दौरान नीम की पत्तियों से घरों को सजाया जाता है ताकि वातावरण शुद्ध रहे और बुरी शक्तियों का प्रवेश न हो। नीम के वृक्ष के नीचे पूजा करना शुद्धता, शांति और स्वास्थ्य की कामना से जुड़ा होता है। विशेषकर महिलाओं द्वारा नीम की पूजा कर परिवार के स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना की जाती है।
- नीम की पत्तियाँ, छाल, बीज, फूल और तेल — सभी हिस्से औषधीय गुणों से भरपूर हैं। आदिवासी वैद्य/गुणीजन और परंपरागत

उपचारकर्ता इसे ‘कड़वा लेकिन जीवनदायी’ मानते हैं। नीम की पत्तियाँ त्वचा रोग, फोड़े—फुंसी, खुजली, और मुँहासों के उपचार में प्रयोग की जाती हैं। नीम की छाल का काढ़ा बुखार और मलेरिया के उपचार में दिया जाता है। नीम का तेल चर्मरोग, बालों की जूँ और खुजली में लाभकारी होता है। आदिवासी महिलाएँ गर्भावस्था और प्रसव के बाद नीम की पत्तियों से स्नान कर संक्रमण से बचाव करती हैं। बच्चों को दस्त और पेट के कीड़े से बचाने के लिए नीम का रस दिया जाता है। विशेषकर गर्मी और बरसात के मौसम में नीम की दवाएं शरीर को संक्रमण और बाहरी रोगों से बचाने में बेहद कारगर होती हैं।

- नीम की औषधीय उपयोगिता इस बात का



प्रमाण है कि आदिवासी ज्ञान प्रणाली कितनी गहन, वैज्ञानिक और पर्यावरण सम्मत है। नीम केवल दवा नहीं, बल्कि प्राकृतिक चिकित्सा का जीवंत स्तंभ है जो आज के आधुनिक समय में भी पूरी प्रामाणिकता से टिकाऊ स्वास्थ्य समाधान प्रदान करता है।

- आदिवासी समाज में नीम केवल एक औषधि या पूजनीय वृक्ष नहीं, बल्कि जीवन के हर महत्वपूर्ण मोड़ पर उसका सहभागी होता है। गर्मियों के मौसम में नीम की हरी टहनियों से बनी चटाई पर सोने की परंपरा आज भी कई क्षेत्रों में जीवित है, जिससे शरीर को शीतलता मिलती है और गर्मी जनित रोगों से राहत मिलती है। नवजात शिशु को नीम के पत्तों के समीप रखने की परंपरा संक्रमण से बचाव के साथ—साथ प्राकृतिक स्पर्श प्रदान करने हेतु निर्भाई जाती है।
- विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर नीम की पत्तियाँ और टहनियाँ वर—वधू की रक्षा के लिए प्रयोग की जाती हैं। त्योहारों जैसे होली, दीपावली और नवरात्रि में नीम के पत्ते घर के दरवाजों पर बाँधे जाते हैं ताकि रोग और बुरी शक्तियों का प्रवेश रोका जा सके। नीम का धुआँ वातावरण को शुद्ध करता है, जिससे कीटाणु नष्ट होते हैं। गाँव के वैद्य/गुणीजन नीम के पौधों को अपनी दवा की बगिया का मुख्य हिस्सा मानते हैं।

पीपल जीवनचक्र और विशेषताएं, सदा हरा और स्थायित्व का प्रतीक

- पीपल का वृक्ष अपनी गहराई तक जाती जड़ों, चौड़ी छाया और निरंतर हरे पत्तों के कारण जीवन शक्ति और स्थायित्व का प्रतीक माना जाता है। यह वह दुर्लभ वृक्ष है जो वर्ष भर हरा—भरा रहता है — चाहे भीषण गर्मी हो, ठंडी सर्दी या फिर तेज बारिश। इसकी वृद्धि धीमी परंतु स्थिर होती है, जो सहनशीलता और धैर्य की जीवंत मिसाल है। पीपल के बीज सामान्यतः पक्षियों द्वारा फैलाए जाते हैं; वे किसी दीवार की दरार या छतों पर उगकर भी अपने अस्तित्व की घोषणा कर देते हैं। आदिवासी समुदायों में पीपल को दीर्घजीवी



वृक्षों का जीवनचक्र और इनसे जुड़ी आदिवासी समुदाय की परंपराएं

और शुभ वृक्ष माना जाता है, जो पीढ़ियों तक गाँव की छाया बना रहता है।

- समाज में पीपल को अत्यंत पवित्र और दिव्य वृक्ष माना गया है। यह केवल एक वृक्ष नहीं, बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश — तीनों देवताओं का वासस्थल माना जाता है। पीपल की पूजा विशेषकर स्त्रियों द्वारा की जाती है, जो परिवार की समृद्धि, सुरक्षा और संतान प्राप्ति की कामना से व्रत रखती हैं और परिक्रमा करती हैं। सप्ताह के प्रत्येक दिन पीपल की छाया में बैठकर पूजा करना आत्मिक शांति और पापों से मुक्ति का साधन माना जाता है। आदिवासी महिलाएँ पीपल के तने पर लाल धागा बाँधकर मनोकामना व्यक्त करती हैं। कई क्षेत्रों में पीपल के वृक्ष के नीचे देवी-देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं, जहाँ वर्ष भर पूजा-पाठ और आरती का आयोजन होता है।
- पीपल न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि औषधीय दृष्टि से भी इसका स्थान विशिष्ट है। इसकी छाल, पत्तियाँ, फल और जड़ें अनेक रोगों के उपचार में उपयोगी मानी जाती हैं। परंपरागत आदिवासी चिकित्सा पद्धतियों में पीपल की छाल का काढ़ा श्वास संबंधी विकार, दमा और खांसी में लाभकारी माना जाता है। इसके दूध का प्रयोग बाह्य चोटों और फोड़े-फुंसियों पर किया जाता है। पीपल की पत्तियों को सुखाकर उनका चूर्ण रक्तस्राव, नकसीर और आंतरिक जलन के उपचार में दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, इसकी जड़ों का रस बच्चों के पेट दर्द और बुखार में प्रयोग किया जाता है। इस वृक्ष की औषधीय उपयोगिता यह दर्शाती है कि प्रकृति और परंपरा का मेल आदिवासी समाज में कितनी सूझ-बूझ से गुँथा हुआ है।
- पीपल का वृक्ष गाँवों में केवल पूजा स्थल नहीं होता, बल्कि सामाजिक एकता और सामूहिक विमर्श का केंद्र भी होता है। गाँव के मध्य में लगाए गए पीपल के नीचे एक कबूतरा बनाया जाता है जिसे 'देवरा' कहा जाता है। यहाँ पर पंचायत की बैठकें, धार्मिक अनुष्ठान, गीत-नृत्य और सामूहिक चर्चा आयोजित की जाती है। बुजुर्गों की सलाह, बच्चों की कहानियाँ और महिलाओं के भजन — सब कुछ

इसी वृक्ष की छाँव में पनपते हैं।

- कई समुदायों में पीपल की परिक्रमा करना विशेष फलदायी माना गया है — यह संतान प्राप्ति, लंबी आयु और रोगों से मुक्ति का प्रतीक है। विवाह से पूर्व वर-वधू द्वारा पीपल के नीचे पूजा कर आशीर्वाद लेने की परंपरा आदिवासी समाज में आम है। मृत्यु के उपरांत भी पीपल के नीचे दीपक जलाकर आत्मा की शांति की प्रार्थना की जाती है, जिससे यह वृक्ष जीवन और मृत्यु दोनों में आध्यात्मिक सहभागिता निभाता है।

महुआ आदिवासी जीवन का एक अद्वितीय जीवनदायी वृक्ष

- महुआ आदिवासी जीवन का एक अद्वितीय जीवनदायी वृक्ष है, जो न केवल पोषण और जीविका का स्रोत है, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह वृक्ष मार्च-अप्रैल के महीने में फूलों से भर उठता है और मई-जून तक इसके फल पककर तैयार हो जाते हैं। लगभग 50 से 60 वर्षों तक फल देने वाला



- यह वृक्ष आदिवासी अंचलों में एक स्थायी प्राकृतिक संपदा माना जाता है। महुआ के फूलों का उपयोग स्थानीय लड्डू, चटनी, और औषधीय नुस्खों में होता है, जबकि इसके बीजों से निकाला गया तेल भोजन पकाने और शरीर पर मालिश के लिए अत्यंत उपयोगी होता है। आदिवासी समाज में महुआ को 'धन का वृक्ष' कहा जाता है, क्योंकि यह वर्ष भर कमाई, पोषण और सामाजिक गतिविधियों का आधार बनता है। महुआ के वृक्ष के नीचे विवाह,

मृत्युभोज, उत्सव, देवी-देवताओं की पूजा और सामूहिक नृत्य जैसे कई धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजन होते हैं। यह वृक्ष केवल आजीविका नहीं, बल्कि भावनात्मक और आध्यात्मिक जुड़ाव का माध्यम भी है।

- कई समुदायों में इसे काटना पाप समझा जाता है और इसकी छाया को ज्ञान, शांति और सामूहिकता का स्थल माना जाता है। परिवार की महिलाएँ महुआ एकत्रित करने को पर्व की तरह मनाती हैं और घर-घर में इसके फूलों का संग्रह एक परंपरा का रूप ले चुका है। बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक, महुआ जीवन के हर चरण में सहभागी बनता है — कभी स्वाद और स्वास्थ्य के रूप में, तो कभी लोकगीतों और परंपराओं में एक अमिट स्मृति की तरह। यह वृक्ष आदिवासी संस्कृति का पर्यावरणीय प्रतीक है, जो प्रकृति के साथ संतुलित सहअस्तित्व की मिसाल है।

आँवला — प्रतिरोधकता का प्रतीक

- आँवला आदिवासी समुदायों के जीवन में प्रतिरोधक क्षमता, स्वास्थ्य और समृद्धि का प्रतीक है, जो केवल एक फल नहीं बल्कि परंपरा, आस्था और पोषण का संगम है। यह वृक्ष वर्ष भर हरा-भरा रहता है और विशेष रूप से शीत ऋतु में फलता है, जब इसका फल पूर्ण रूप से पककर तैयार होता है। आँवले का फल विटामिन C से भरपूर होता है और सर्दियों में इसका सेवन शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने के लिए अत्यंत लाभकारी माना जाता है। आदिवासी क्षेत्रों में आँवले को सुखाकर उसका चूर्ण बनाना, मुरब्बा तैयार करना और अचार के रूप में संरक्षित करना एक आम परंपरा है, जिससे वर्ष भर इसका उपयोग स्वास्थ्यवर्धक औषधि के रूप में किया जा सके। आँवला पाचन सुधारने, बालों को मजबूत बनाने, रक्त को शुद्ध करने और सर्दी-जुकाम जैसे मौसमी रोगों से रक्षा करने में सहायक माना जाता है।
- सामाजिक और पारंपरिक दृष्टि से भी आँवले का विशेष महत्व है—आँवला नवमी के दिन आदिवासी परिवार विशेष पूजा-अर्चना करते हैं, जिसमें महिलाएँ आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर व्रत कथाएँ सुनती हैं और परिवार की सुख-समृद्धि तथा संतान सुख की कामना



करती हैं। इस वृक्ष को दीर्घायु और समृद्धि का प्रतीक माना जाता है, जिसके पास दीपक जलाना, तीज-त्योहारों पर पूजा करना और जल अर्पित करना आज भी अनेक घरों में निभाई जा रही परंपराएँ हैं। आँवले का वृक्ष न केवल स्वास्थ्य का रक्षक है, बल्कि एक ऐसी जीवंत कड़ी है जो आदिवासी समाज को प्रकृति, पूजा और परंपराओं से जोड़ता है — यह वृक्ष जीवन के हर चरण में आश्रय, आस्था और आरोग्यता का स्रोत है।

समुदाय के लिए संदेश : राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश के आदिवासी समुदायों के जीवन में वृक्ष केवल जैविक संसाधन नहीं हैं, बल्कि संस्कृति, आस्था और अस्तित्व के लिए जीवंत प्रतीक हैं। नीम से लेकर महुआ तक, हर वृक्ष समुदाय को संरक्षण, पोषण और आध्यात्मिक ऊर्जा देता है। इन वृक्षों का संरक्षण केवल पर्यावरण की रक्षा नहीं, बल्कि परंपराओं, स्वास्थ्य और संस्कृति की रक्षा भी है। 'वृक्षों को बचाना, अपनी संस्कृति और स्वास्थ्य को संजोना है। ये पेड़ हमारे पूर्वजों की धरोहर हैं, इनका सम्मान और संरक्षण हमारी जिम्मेदारी है। आइए, मिलकर इन वृक्षों के जीवनचक्र को समझें, उनसे जुड़ी परंपराओं को जीवित रखें और भावी पीढ़ी को एक हरित, समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से संपन्न और समाज को सही दिशा दें।'

फूलों की छांव में छिपा जीवन का उपचार

भारत की प्राचीन पारंपरिक वन संपदा में कचनार का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। यह एक ऐसा वृक्ष है, जो केवल वसंत ऋतु में सौंदर्य नहीं बिखेरता, बल्कि अपने भीतर औषधीय गुणों, पारंपरिक महत्व और पर्यावरणीय उपयोगिता की अमूल्य निधि भी समेटे हुए है। यह औषधीय गुणों से लेकर पर्यावरण की रक्षा तक एक चमत्कारी वृक्ष है।

परिचय और परंपरागत जुड़ाव

हमारे ग्रामीण जीवन में कचनार को रसोई, पूजा-पाठ और घरेलू उपचारों में विशेष स्थान प्राप्त है। यह वृक्ष मार्च-अप्रैल में गुलाबी, बैंगनी और सफेद फूलों से ढंक जाता है। लोककथाओं, गीतों और उत्सवों में कचनार की उपस्थिति इसकी सांस्कृतिक गहराई को दर्शाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी कलियों की सब्जी और फूलों का रायता एक पारंपरिक व्यंजन है, जिसे स्वाद और स्वास्थ्य दोनों के लिए सराहा जाता है।

औषधीय गुण और आयुर्वेदिक महत्व

आयुर्वेद में कचनार को सूजन और गांठों को समाप्त करने वाली श्रेष्ठ औषधि माना गया है। इसकी छाल, फूल, कली, जड़ और टहनियाँ अनेक रोगों में लाभकारी होती हैं :

थायरॉइड और गांठों के लिए अमृततुल्य: कचनार की छाल और फूल का काढ़ा गण्डमाला (लिम्फ नोड्स की सूजन) और थायरॉइड में अत्यंत लाभकारी माना गया है। गोरखमुंडी के साथ इसका काढ़ा गांठों को धीरे-धीरे गलाने में कारगर है।

त्वचा रोग और रक्त विकार : दाद, खाज, फोड़े-फुंसी, एक्जिमा आदि में कचनार की छाल का सेवन या लेप बहुत राहत देता है। यह खून को शुद्ध करने में सहायक है।

पाचन और यकृत स्वास्थ्य: कचनार की जड़ का काढ़ा लीवर की कार्यप्रणाली को सुधारता है।

कलियों का सेवन पेट की गैस, कीड़े, और कब्ज जैसी समस्याओं में लाभदायक होता है।

बवासीर, प्रदर, मासिक विकार: कचनार की छाल और फूल स्त्री रोगों में विशेष उपयोगी है। इसके सेवन से रक्तस्राव नियंत्रित होता है और शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार होता है।

दांत और मुंह के रोग: कचनार की टहनियों की राख से मंजन करने से दांत दर्द और छालों में राहत मिलती है।

प्रयोग की विधि (आयुर्वेदिक काढ़ा)

- कचनार की छाल 15 ग्राम (याताजी छाल 25-30 ग्राम) और 1 चम्मच गोरखमुंडी को 1 गिलास पानी में उबालें।

- 5-7 मिनट उबालने के बाद छानकर गुनगुना सेवन करें। यह काढ़ा दिन में दो बार लगातार 30-40 दिन तक लें। स्वाद में कड़वाले किन प्रभाव में अत्यंतगुणकारी है।

पोषण की दृष्टि से कचनार का उपयोग

पोषण संबंधी प्रमुख उपयोग:

कचनार न केवल औषधीय गुणों से भरपूर है, बल्कि पोषण के दृष्टिकोण से भी अत्यंत लाभकारी वनस्पति है। इसके फूलों, कलियों और पत्तियों में ऐसे कई पोषक तत्व पाए जाते हैं जो शरीर को आवश्यक ऊर्जा, रोग-प्रतिरोधक क्षमता और पाचन शक्ति प्रदान करते हैं। ग्रामीण भारत में इसे एक पोषक-सब्जी के रूप में विशेष स्थान प्राप्त है।

1. प्रोटीन और फाइबर का स्रोत: कचनार की कलियों और फूलों में प्राकृतिक प्रोटीन, फाइबर, और एंटीऑक्सीडेंट्स होते हैं, जो शरीर की कोशिकाओं की मरम्मत में मदद करते हैं और पाचन क्रिया को सुधारते हैं।

2. आयरन और कैल्शियम युक्त: इसके फूलों में आयरन और कैल्शियम की मात्रा होती है, जो

एनीमिया, हड्डियों की कमजोरी और थकान जैसी समस्याओं से लड़ने में सहायक होते हैं।

3. पाचन के लिए उत्तम: कचनार की कलियों की सब्जी गैस, कब्ज, और अपच में लाभदायक है। यह जठराग्नि को प्रज्वलित करती है और भूख बढ़ाती है।

4. कम कैलोरी, अधिक पोषण: कचनार की सब्जी व रायता कम वसा वाले और उच्च पोषक तत्वों वाले आहार हैं, जो वजन नियंत्रण में मदद करते हैं।

5. डीटॉक्सिफाइंग गुण: कचनार के फूलों और छाल से बना काढ़ा खून को शुद्ध करता है, जिससे शरीर में टॉक्सिन्स बाहर निकलते हैं और त्वचा स्वस्थ बनी रहती है।

पोषण से भरपूर पारंपरिक व्यंजन:

कचनार की सब्जी— कचनार की कली की सब्जी दूध प्याज, लहसुन, टमाटर और देसी मसालों के साथ बनाई जाती है।

—स्वादपि्ट होने के साथ-साथ पेट साफ रखने में सहायक है।

कचनार फूलों का रायता

—फूलों को हल्का उबालकर दही में मिलाकर बनाया जाता है।

—शरीर को ठंडक पहुंचाता है और गर्मियों में बेहद उपयोगी है।

कचनार की कढ़ी

—कलियों को बेसन और दही में पकाकर बनाई जाती है, जो पचने में हल्की होती है।

पर्यावरण और जलवायु में भूमिका

कचनार केवल औषधि नहीं, बल्कि पर्यावरण का रक्षक भी है। यह वृक्षरूपायु प्रदूषण को कम करता है

—इसके पत्ते धूल और हानिकारक गैसों को अवशोषित करते हैं। पानी को जमीन में रोकने में मददगार—इसकी गहरी जड़ें जल संरक्षण में सहायक होती हैं। कार्बन सिंक—यह वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित कर जलवायु परिवर्तन को धीमा करने में योगदान देता है। पक्षियों और मधुमक्खियों का आश्रय—जैव-विविधता के संरक्षण में सहायक है।

हमारी परंपरा और आज की आवश्यकता

हमारी परंपराओं में कचनार एक पूजनीय वृक्ष रहा है। गाँवों में इसके फूल पूजा में चढ़ाए जाते हैं और इसकी छांव में बैठकर बड़ों से कहानियाँ सुनी जाती थीं। आज जब प्रदूषण, जलवायु असंतुलन और रोगों की भरमार है, तब कचनार जैसे वृक्षों को पहचानने, सहेजने और लगाने की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है।

कचनार केवल एक फूलों से लदा सुंदर वृक्ष नहीं, बल्कि यह एक सच्चा मित्र है — जो हमें रोगों से लड़ना सिखाता है, पर्यावरण की रक्षा करता है और परंपरा से जोड़ता है। कचनार केवल औषधि ही नहीं, एक पोषणयुक्त प्राकृतिक आहार भी है। विशेष रूप से ग्रामीण और आदिवासी समुदायों में यह स्वास्थ्य वर्धक खाद्य के रूप में सदियों से उपयोग में लाया जा रहा है। आज जब बाजार के कृत्रिम आहार जीवनशैली रोगों को जन्म दे रहे हैं, ऐसे में कचनार जैसे प्राकृतिक और देसी आहारों का पुनः प्रचार-प्रसार समय की माँग है।

कचनार को केवल पेड़ न समझें — इसे अपनाएँ, उगाएँ और आने वाली पीढ़ियों के लिए इसे संजोकर रखें।

पोषण के लिए अपनाएं—कचनार को भोजन में शामिल करें।



अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें -
वागड रेडियो 90.8 FM, मुकाम-पोस्ट कुपड़ा, वाग्धारा केम्पस, बाँसवाड़ा (राज.) 327001
फोन नम्बर है - 9460051234 ई-मेल आईडी - radio@vaagdhara.org

यह
“वाते वाग्धारा नी”
केवल
आंतरिक
प्रसारण है।

